उत्तराखण्ड के प्रमुख मेले

आदिबद्री का नौठा कौथिक

आदिबद्री धाम ऋषि नारायण की तपस्थली रहा है। पुरातन काल में इसे नारायण मठ के नाम से भी जाना जाता था। आदिबद्री हरिद्वार से 213 किमी0 की दूरी पर है। यहां देवप्रयाग, श्रीनगर, रूद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग होते हुए पहुंचा जा सकता है। आदिबद्री धाम सोलह मंदिरों का धाम था किन्तु वर्तमान में यहां पर चौदह मंदिर ही अच्छी दशा में विद्यमान हैं।

चौदह मंदिरों के समूह में मुख्य मंदिर भगवान विष्णु का है। जिसके गर्भग्रह में भगवान विष्णु की काले पाषाण की तीन फीट ऊंची प्रतिमा खड़ी मुद्रा में है। सभामंडप में दो गणेश प्रतिमाएं काले पाषाण की दांयी ओर स्थापित हैं। मंदिर समूह के कुछ ही नीचे की ओर नारायण गंगा प्रवाहित होती है, जो पिंडर नदी की सहायक नदी के रूप में उत्तरवाहिनी है। मंदिर से आधा

किमी0 की दूरी पर प्राकृतिक वसुधारा है। कई लोग इस प्रपात में स्नान करने के पश्चात् मंदिरों के दर्शन के लिए जाते हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि प्रतिवर्ष बैसाख माह के प्रथम सोमवार को इस स्थान पर विशाल मेला आयोजित किया जाता है। कहा जाता है कि यह मेला क्षेत्र के जाने–माने ठाकुरों ने आदिबद्री को अपना विशिष्ट तीर्थ घोषित करने के साथ ही वर्ष में एक बार आदिबद्री के मंदिर के प्रांगण में पूजा अर्चना करना प्रारम्भ कर दिया। कालान्तर में मंदिर में प्रथम पूजा करना प्रतिष्ठा का विषय बन गया। हर एक गांव के लोग मंदिर में पूजा पहले करने की आशा करने लगे। जिससे संघर्ष और झगड़े की स्थिति उत्पन्न हो गई।

लोग गांवों से जत्था बनाकर पहले पूजा करने का श्रेय लेने के लिए दूसरे गांव के लोगों के प्राण लेने तक उतारू हो जाते। वे हाथों में बरछे, लाठियां, भाले आदि हथियारों को लेकर एक साथ निर्धारित तिथि को मंदिर परिसर में पहुंचते। टकराव होने पर इनमें खूनी

संघर्ष तक हो जाता। लोकश्रुति है कि इस अवसर पर मंदिर प्रांगण, युद्ध भूमि में बदल जाता और कई लोगों को प्राण तक गंवाने पड़ते थे। समय के साथ–साथ इस तरह के संघर्ष में स्वंय को बचाने के लिए लोग अपने साथ लोहे के तसले आदि लाने लगे। जोढ़ाल के रूप में प्रयोग किये जाते थे।

कालान्तर में धीरे–धीरे इस संघर्ष ने मेले का रूप ले लिया। लोग संघर्ष को त्याग कर भाई–चारे के भाव से मेले में सम्मिलित होने लगे। वर्तमान में आदिबद्री के नौठा मेले की तैयारी गांवों मे बैसाखी से आरम्भ हो जाती है। पुराने प्रतीक के रूप में आज भी लोग हाथों में लाठी लिए होते हैं किन्तु उनके दूसरे हाथ में रंग–बिरंगे रूमाल बंधे होते हैं। प्रतीकात्मक युद्ध के रूप में लाठियां मात्र हवा में पटकी जाती हैं। गांवों में नौठा मेले में आते हुए लोग थोड़ी–थोड़ी दूरी पर रूक कर गोल घेरा बनाते हुए नृत्य करते हैं। एक व्यक्ति ''नौठा कौथिगों'' कहते हुए झुकता है। अन्य व्यक्ति सिर झुकाकर कहते हैं – हुर्र ह ला, हुर्र ह ला। यह घोष दूर–दूर तक सुनाई देता है।

महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले गीतों में ''कुमामेर'' नाम से एक तिब्बती डाकू का जिक्र आता है, जो भारतीय क्षेत्र में आकर लूट–मार करता था। इस अवसर पर सभी लोग मिलकर लोकनृत्यों व लोकगीतों में भाग लेते हैं। कौथिगेर हंसी–खुशी मेले का आनन्द लेते हैं। पूजा–अर्चना आदि के बाद खुशी–खुशी मेले का समापन हो जाता है।

गेंद का मेला

गेंद का मेला मकर संक्रांति के दिन पौड़ी गढ़वाल के डाडामंडी, थलनदी, कोटद्वार के निकट मवाकोट, दालमीखेज आदि स्थानों पर आयोजित किए जाते हैं। इन मेलों में लोग हजारों की संख्या में सम्मिलित होते थे। युवा–वृद्ध ही नहीं, विवाहित बेटियां, माताएं और बच्चों आदि सभी का उत्साह देखते ही बनता था। कई

दिनों पहले से ही गेंद के मेले में जाने के लिए तैयारी होने लगती थी। सबसे पहली तैयारी होती नहाने–धोने की। घर–बाहर के कार्यों की व्यस्तता के कारण कई दिनों तक न नहा सकने वाली महिलाएं भिंवल की टहनियों की छाल को कूटकर उससे शैम्पू की तरह बाल धोती। सर्दी के मौसम में हाथ–पैरों में जीम मैल की पर्त को गर्म पानी से खूब रगड़–रगड़ कर साफ किया जाता है। नये कपड़े पहने जाते अथवा पुराने कपड़ों को धोकर उनको चमकाया जाता है।

दूसरी तरफ मेले में जाने वाली मां को यह चिंता रहती है कि उसकी लाडली भी ससुराल से गिन्दी का कौथिक देखने आयेगी। उसके लिए कौन सा पकवान बनाकर ले जाये। स्वाले, रयांस अथवा लोबिया की भरी हुई रोटी और भांग के मसाले में छौंकी हुई मूला की सब्जी। यह सब रात, खुलने से पहले ही तैयार कर लिए जाते। क्योंकि मेला स्थल अधिक दूर होने के कारण प्रातः अंधेरे में ही मेले स्थल की ओर प्रस्थान करना होता था।

मेला स्थल पर खेत के एक किनारे में दूरस्थ क्षेत्र से आई बेटी अपनी मां से मिलती। मां–बेटी एक–दूसरे से लिपटकर आंसुओं से अपने हृदय में छुपे उद्‌गार को व्यक्त करती। मायके और ससुराल की असल–कुशल जानने के पश्चात् वहीं पर बैठकर मां के लाए हुए पकवान खाए जाते।

फिर होती मेले में सजे बाजार में खरीददारी। मैदानी क्षेत्र से आये हुए व्यापारियों द्वारा यहां पर अनेक तरह की दुकानें सजाई गयी होती। महिलाओं के लिए विभिन्न प्रकार की श्रृंगार सामग्री उपलब्ध रहती। विशेष रूप से चूड़ियां, बिन्दी, गले की मालाएं आदि। बच्चों के लिए अनेक तरह के खिलौने, मिठाई व खान–पान की दुकानों में जलेबी, पकौड़ी, गुड़ के सेल, आदि उन दिनों ये चीजें मेले में ही खाने को उपलब्ध होती थीं।

गेंद का खेल दोपहर के पश्चात् प्रारम्भ होता है। थल नदी में गेंद का खेल एक बड़े मैदान में अजमेर और उदयपुर पट्‌टी के लोगों के बीच होता है। जबकि डाडामंडी में गेंद का खेल लंगूर और सीला पट्‌टी के

लोगों के बीच खेला जाता है। ''गिन्दी का मेला'' अपने ढ़ंग का विशिष्ट औ विचित्र खेल है। सम्भवतः देश के अन्य किसी भाग में इस तरह का मेला नहीं लगता है। उन दिनों पहाड़ में कड़ाके की सर्दी रहती है। कृषि ने होने से खेत खाली पड़े रहते हैं। जिनमें यह खेल होता है।

गेंद के खेल में भाग लेने वाले दो पट्टियों के लोग दो धड़ों में विभक्त हो जाते हैं। चमड़े से बनी काफी बड़े आकार की गेंद को एक निर्धारित स्थान पर दोनों दलों के मध्य में रख दिया जाता है। इसके बाद गेंद को प्राप्त करने के लिए दोनों तरफ से सैकड़ों खिलाड़ी आपस में भिड़ जाते हैं। दोनों पट्टियों के लोग गेंद को अपने–अपने पाले में ले जाने का प्रयास करते हैं। विरोधी पक्ष के लोगों को धकियाते हुए जब गेंद को झपटकर एक पक्ष के लोग उसे अपनी ओर निर्धारित स्थान पर फेंक देते हैं तो उस पट्टी की विजय हो जाती है।

खेल के दौरान दोनों पक्षों के समर्थक सफेद व लाल रंग के झंडों को लहराकर हल्ला करते हुए उनके

साथ–साथ चलते रहते हैं। साथ ही ढोल–ढमाऊ आदि वाद्यों के साथ दर्शकों का समूह खिलाड़ियों का उत्साहवर्द्धन करता रहता है।

इस अद्भुत व रोमांचक मेले मे न कोई रेफरी होता है और न ही हार–जीत का कोई निर्धारित समय होता है। दोनों पक्षों के सैकड़ों लोग, गेंद को पकड़े हुए व्यक्ति को धकियाते हुए अपने पाले की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं। कभी–कभी हार–जीत का निर्णय समय पर न हो पाने के कारण खेल सांय को देर तक चलता है।

लोक मान्यता है कि थलनदी में गेंद मेले का आयोजन वहां पर अज्ञातवास के दौरान हुए कौरव–पांडवों के युद्ध की स्मृति के रूप में मनाया जाता है। यहां पर मेला प्राचीन काल से ही प्रतिवर्ष मकर संक्रांति के पर्व पर लगता है। इसी प्रकार डाडामंडी के गिन्दी कौथिक को स्थानीय मौनी मंदिर की किसी घटना से जोड़ा जाता है। गिन्दी का कौथिक वीरता और साहस का द्योतक है। इस

अवसर पर गेंद खेलने का साहस वही व्यक्ति करता है, जिसमें दम–खम होता है।

उत्तराखण्ड एग्जाम नोट्स